Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 1 pp. 7-11, 2006 DOI: 10.51220/hjssh.v1i1.2

वैदिक शासन परम्परा में उदारवादी तत्व

जयजीत बड़थ्वाल
इतिहास विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, परिसर पौड़ी (उत्तराखण्ड)

आर्य भारत में अर्ध-विचरणशील पशुचारियों के रूप में आये थे, उनका निर्वाह मुख्यतः पशु उत्पादों से होता था और कुछ समय तक पशुपालन ही उनका मुख्य व्यवसाय रहा[1]। भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दशा का प्रथम दृश्य प्रस्तुत करने वाली रचना ऋग्वेद है। ऋग्वैदिक कालीन भारत में राजनीतिक संगठन का विकास क्रमिक रूप से हुआ। गृहों (परिवारों) से कुल बने, उनसे ग्राम बने, ग्रामों के समूहों से विश बने और उनके बाद जनों का निर्माण हुआ तथा अन्त में राष्ट्र की उत्पत्ति हुई[2]। प्राचीन वैदिक साहित्य में अनेक जनों का उल्लेख मिलता है। वन्द्योपाध्याय के अनुसार वैदिक समुदायों में ग्राम सबसे छोटे और जन सबसे ऊँचे राजनैतिक व सामाजिक संघ थे[3]।

डॉ0 सिन्हा के अनुसार प्रारम्भ में आर्यों का संगठन जनों के रूप में था, छोटे-छोटे जन मिलकर अनार्यो से युद्ध करते थे और ऐसे विजेता जन आपस में मिल जाया करते थे। समय बीतने के साथ ये जन पृथक अथवा संयुक्त रूप से गॉवों में बस गये और खेती तथा अन्य उद्योग करने लगे। जिस भूखण्ड पर वे बसे उसके प्रति उनमें प्रेम की भावना उत्पन्न हुई होगी, उस भावना से जिसे प्रतिरक्षा व आक्रमण की आवश्यकताओं ने सुदृढ़ बनाया होगा, राजनीतिक चेतना उदय हुई होगी, इस प्रकार आर्यों में प्रथम अथवा प्रारम्भिक राज्य की उत्पत्ति हुई होगी; जिसे उन्होंने राष्ट्र का नाम दिया[4]। मुकर्जी के अनुसार राष्ट्र शब्द देश या राज्य के लिये था[5], किन्तु प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं के उदय, उनके संविधानों तथा राजनैतिक प्रकृति के विषय में एक निश्चित तथा ठोस निष्कर्ष निकालना वास्तव में एक अत्यन्त दुष्कर प्रयास है।

प्राचीन भारतीय साहित्य के कतिपय प्रसंगों के आधार पर अनेक विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्राचीन भारत में भी राज्य तथा राजा के पद का प्रादुर्भाव 'सामाजिक समझौते' के सिद्धान्त के अनुरूप ही हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित कथा के अनुसार देवासुर संग्राम में जब देवता असुरों पर विजय पाने में असमर्थ हुए तो युद्ध के सफल संचालन के लिए उन्होंने अपने में से एक राजा का चुनाव करना आवश्यक समझा, प्रजापति की अध्यक्षता में उन्होंने इस कार्य हेतु विचार किया तथा इस प्रकार इन्द्र को अपना राजा चुना[6]। प्रो0 आर0 एस0 शर्मा का विचार है कि वैदिक साहित्य में वर्णित् देवताओं द्वारा राजा के चयन की कथा तत्कालीन वैदिक समाज में राज्य के प्रादुर्भाव को प्रतिबिम्बित करती है[7]।

बौद्ध परम्परा में भी राजा के पद के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में 'सामाजिक समझौते' के सिद्धान्त की स्पष्ट छवि दिखलाई पड़ती है। दिग्घनिकाय के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भिक दिनों में ऐसा समय था जब प्रत्येक वस्तु आसानी से सुलभ होती थी तथा समस्त जीवधारियों में पूर्ण सामंजस्य था। धीरे-धीरे

©SHARAD

अभाव, आवश्यकतायें तथा इच्छायें प्रकट होने लगीं, जिसका परिणाम झगड़ों और संघर्षो के रूप में सामने आया। फलस्वरूप नियमों तथा एक नियन्त्रणकारी सत्ता की आवश्यकता महसूस की गई, इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि शासन और न्याय की रक्षा के लिये एक व्यक्ति को निर्वाचित किया जाय, उसे महासम्मत कहा गया एवं खत्तिय की उपाधि मिली तथा उपज का एक निश्चित भाग उसे दिया जाना तय किया गया। रोमिला थापर के अनुसार बौद्धों द्वारा प्रस्तुत यह विवरण सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त की सम्भवतः प्राचीनतम अभिव्यक्ति है[8]।

वैदिक काल में शासन पद्धति राजतन्त्री थी किन्तु विद्वानों का विचार है कि वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर राजा के निर्वाचन के उल्लेख भी प्राप्त होते है, इस तथ्य को लेकर इतिहासकारों में मत-मतान्तर है कि राजा के निर्वाचन की प्रथा वैदिक काल के किन चरणों में प्रचलित थी। डॉ0 परमात्मा शरण का विचार है कि ऋग्वेद (10/173) तथा अथर्ववेद (6/87-3/4/7) में राजा के निर्वाचन का भी उल्लेख है[9]।

अथर्ववेद के एक प्रार्थना गीत में वर्णन है कि सिंहासन पर बैठने के समय राजा से कहा जाता था- ''जन के सदस्य तुझे राजपद के लिये निर्वाचित करेंगे और सजातः तुझे आमन्त्रित करके तुझसे मिलने आयेंगे।'' इसके आधार पर वन्द्योपाध्याय का विचार है कि ऋग्वेद में तो ऐसे साक्ष्य समान नहीं हैं किन्तु अथर्ववेद में हम ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख पाते है जो एक प्रकार से राजा का वरण करते थे, इनमें राजा के सम्बन्धी सजातः और अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति सम्मिलित थे[10]।

इरफान हबीब तथा विजय कुमार ठाकुर का विचार है कि ऋग्वैदिक काल अथवा पूर्व वैदिक काल में राजा का पद आनुवाशिंक था तथा ऋग्वेद में राजा के निर्वाचन का लगभग कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है[11]। किन्तु अथर्ववेद में मन्त्रों तथा बाल्मीकि रामायण में दशरथ द्वारा राम की योग्यताओं तथा राज्योचित गुणों का उल्लेख करते हुए अपनी परिषद् में उपस्थित धर्म के ज्ञाताओं, ब्राह्मणों, सेनापतियों (बलमुख्याश्च), पुर तथा जनपद के प्रमुख व्यक्तियों की उपस्थिति में राम को युवराज बनाने की इच्छा तथा प्रस्ताव किया जाना, परिषद में उपस्थित समुदाय से इस पर विचार कर अपना निर्णय देने हेतु कहा जाना[12], इस बात का स्पष्ट संकेत करते हैं कि रामायण के रचनाकाल से पूर्व राजा के चयन की प्रथा आर्यो में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही होगी, जिसके अवशेष रामायण में राम के युवराज पद हेतु परिषद में प्रस्ताव के रूप में दिखाई पड़ते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि वैदिक शासन परम्परा में युवराज तथा राजा के चयन में किसी न किसी रूप में जन सहभागिता की अवश्य ही भूमिका रहा करती थी।

वैदिक शासन पद्धति में लोकवादी तत्वों के दर्शन के लिऐ यह विवेचन आवश्यक है कि क्या उनकी शासन व्यवस्था में लोकमत की किसी भी प्रकार से सहभागिता देखी जा सकती है अथवा नहीं। क्या वैदिक कालीन राजाओं के निर्णय निरंकुशता के आधार पर होते थे अथवा उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण था।

वैदिक साहित्य में सभा और समिति नामक दो संस्थाओं का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है, इन्हें प्रजापति की दो पुत्रियाँ भी कहा गया है[13]। किन्तु इनके कार्य तथा प्रकृति के विषय में विद्वानों में अत्यधिक मत मतान्तर रहा है। डॉ0 के0 पी0 जायसवाल का कथन है कि आर्यो के प्राचीनतम साहित्य वेद में हम पाते हैं कि राष्ट्रीय जीवन और गतिविधियों को लोकप्रिय सभाओं तथा संस्थाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता था।

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में कई स्थलों पर 'सभा' का उल्लेख है[14]। इसे नरिष्ठा भी कहा गया है। डॉ0 जायसवाल का मत है कि सभा कुछ चुनींदा व्यक्तियों की संस्था थी और इसका एक कार्य न्याय प्रदान करना भी था[15]। शामशास्त्री का कथन है कि हम यह निश्चित रूप से जानते है कि वैदिककालीन शासन के दो महत्वपूर्ण अंग सभा और राजा थे। उन दोनों में सभा राजा से अवश्य ही महत्वपूर्ण रही होगी, क्योंकि राजा स्पष्टतः सभा की दया पर निर्भर करता था।[16] वन्द्योपाध्याय का भी मत है कि सभा न्याय सभा के रूप में कार्य करती थी और कर निर्धारण का भी कार्य करती थी।

डॉ0 राधा कुमुद मुकर्जी के अनुसार ऋग्वेद के मन्त्रों में कई स्थलों पर सभा का उल्लेख है, किन्तु उनसे उसके स्वरूप और कार्यो पर निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता, उसका अर्थ कहीं संसद भी है तो कहीं सामाजिक सम्मिलन भी तथा सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिये सभा स्थल भी। द्यूत क्रीडा के लिए भी सभा का प्रयोग होता था[17]। इरफान हबीब और विजय कुमार ठाकुर का भी विचार है कि सभा और समिति में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है और दोनों ही शब्द केवल राजकीय कार्यो के परिप्रेक्ष्य में ही प्रयुक्त हुए हों ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। सामान्य अर्थो में प्रमुख व्यक्तियों के सम्मिलन के लिए इन शब्दों का प्रयोग हुआ है और कभी-कभी तो द्यूत क्रीडा के सम्बन्ध में भी 'सभा' शब्द प्रयुक्त हुआ है[18]।

कतिपय विद्वानों का मत है कि समिति का वैदिक शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था, घोषाल के विचार से यह सामान्य प्रजा की लोकप्रिय राष्ट्रीय सभा थी[19]। राजनैतिक शक्ति का क्रियान्वयन समिति के माध्यम से ही किया जाता था।[20] कने के शब्दों में यह कहना असम्भव है कि वैदिक काल में सभा या समिति का संविधान क्या था, हम केवल यह कह सकते है कि यह जनता की एक सभा थी जिसमें राजा, विद्वान और अन्य व्यक्ति जाते थे। किन्तु वैदिक मन्त्रों की प्रार्थनाओं से समिति के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में महत्त्व को स्पष्ट समझा जा सकता है जिनमें यह बल दिया गया है कि राजा और समिति दोनो के मन्त्र, मन, चित्त, प्रयत्न और हृदय समान हों।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।

अथर्ववेद के काल तक सभा व समिति के अधिकार बने रहे किन्तु आगे चलकर उनका महत्त्व कम होता गया, ब्राह्मण ग्रन्थों में सभा व समिति का उल्लेख नहीं मिलता उनके पतन के विषय में ड्रेकमियर का कथन है कि राजाओं के शासनाधीन क्षेत्रों में वृद्धि ने सभा व समिति के पतन में योग दिया ओर उसी काल में प्रायः उनका लोप हो गया, सभा राजा की व्यक्तिगत परिषद में बदल गई और

अपना लोकप्रिय स्वरूप खो देने पर केवल राजा का साधन मात्र रह गयी।[21]

किन्तु जन सहभागिता के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय राजनीति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रम प्राचीन भारत में गणतन्त्रीय शासनों का पाया जाना था। ड्रेकमियर के अनुसार सम्पूर्ण भारत राजतन्त्री न था, मध्य गंगा घाटी में कहीं एकतन्त्र था तो कहीं गणसंघ अथवा प्रजातन्त्री पद्धति चल रही थी।[22] रोमिला थापर ने इसे चीफशिफ या चीफडम कहा है[23]। जायसवाल का विचार है कि भारत में गणतन्त्री पद्धति राजतन्त्र के बहुत बाद आयी, इसका उल्लेख उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में मिलता है।[24]

यह निर्णय कर पाना कठिन है कि गणराज्यों का विकास राजतन्त्रों से हुआ। सबसे अधिक युक्तिसंगत मत तो यह होगा कि अ-राजतन्त्री शासन पद्धति के जीवाणु अतीत की संस्थाओं में छिपे थे और समय बीतने पर ये केवल जीवित ही न रहे बल्कि कुछ स्थानों में सुदृढ़ बन गये[25]। प्राचीन भारत में गणतन्त्र थे इस विषय में दो मत नहीं रहे है, उन विद्वानों को जिन्होंने पूर्व के विषय में केवल निरंकुश, धर्मतन्त्रात्मक, स्वेच्छाचारी शासन की धारणा बनाई हुई है यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्राचीन भारत में गणन्त्रीय संस्थायें थीं। यहाँ के सामाजिक-राजनैतिक जीवन के अनेक स्थलों पर उदारवादी तत्व सक्रिय थे, इस बात को निविर्वाद तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

संदर्भ :-

1- रोमिला थापर, 'भारत का इतिहास', दिल्ली, 1981, पृ. 24
2- डॉ0 परमात्मा शरण, 'प्राचीन भारत में राजनैतिक विचार एवं संस्थाएं', मेरठ, 1977, पृ. 76
3- एन0 सी0 वन्द्योपाध्याय, 'डेवलपमेन्ट' ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पॉलिटिकल थ्योरीज', उद्धृत परमात्मा शरण, वहीं पृ. 76
4- एच0 एन0 सिन्हा, 'द डेवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन पॉलिटी', लंदन, 1938, पृ. 22-23
5- राधा कुमुद मुकर्जी, (अनु0 वा0 शे0 अग्रवाल) 'हिन्दू सभ्यता', दिल्ली 1990, पृ. 81
6- ऐतरेय ब्राह्मण 1/14/23, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/5/9
7- आर0 एस0 शर्मा, एस्पेक्ट्स ऑफ पॉलिटिक आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्शिएन्ट इण्डिया', 1977 पृ. 48
8- रोमिला थापर, वही, पृ. 37
9- परमात्मा शरण, वही, पृ. 79
10- एन0 सी0 वन्द्योपाध्याय, वही पृ. 88-9
11- इरफान हबीब एवं विजय कुमार ठाकुर, 'द वैदिक एज', दिल्ली 2003, पृ. 13-14
12- रामायण, अयोध्या काण्ड, द्वितीय सर्ग
13- अथर्ववेद, 7/12/1
14- ऋग्वेद, (6/28/6, 8/4/9, 10/37/6)
15- के0 पी0 जायसवाल, 'हिन्दू पॉलिटी' अध्याय दो, बंगलौर, 1943

16- आर0 शामशास्त्री, इवोल्युशन ऑफ इण्डियन पॉलिटी, पृ0 87
17- राधा कुमुद मुकर्जी, वही पृ. 83
18- इरफारन हबीब एवं विजय कुमार ठाकुर वही, पृ.14
19- यू0 एन0 घोषाल, 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू पब्लिक लाईफ, पृ. 17
20- एल0 गोपाल, प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारधारा, 1999 पृ. 45
21- चार्ल्स ड्रेकमियर, किंगशिप एण्ड कम्यूनिटी इन अर्ली इण्डिया, स्टेन फोर्ड, 1962, पृ. 34-5
22- चार्ल्स ड्रेकमियर, वही पृ. 34
23- रोमिला थापर 'वंश से राज्य तक' अनुवाद मंगलनाथ सिंह, दिल्ली, 1997, पृ0 68
24- के0 पी0 जायसवाल, वही पृष्ठ 21
25- एन0 सी0 वन्द्योपाध्याय, वही, पृ 239